International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 6; November 2018; Page No. 13-15

सविता सिंह की कविताओं में स्त्री अस्मिता की तलाशः 'अपने जैसा जीवन' कविता संग्रह के विशेष संदर्भ में

रंगस्वामी एन.

सहायक प्रोफसर, हिन्दी विभाग, राजीव गाँधी मेमोरियल आर्टस आन्ड साइंस कॉलेज, अट्टपाडी, पालक्कड़, केरल, भारत

प्रस्तावना

वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री विरोधी व्यवस्था समाज में मौजूद है। समाज में स्त्री के प्रति मान-सम्मान की भावना कम होती जा रही है। दिन व दिन स्त्री के ऊपर अत्याचार, अनाचार का प्रतिशत बढ़ते जा रहे हैं। यानी कि पुरुष प्रधान समाज में स्त्री अपनी अस्मिता को खो बैठती जा रही है। पुरुष वर्चस्व से नियंत्रित स्त्री स्वतंत्र नहीं है। पुरुषों द्वारा निर्मित परंपराएँ रूढ़ियाँ, सनातन मान्यताएँ आदि स्त्री अस्मिता को एक प्रश्न चिह्न लगा दिया है। इस प्रकार अनादि काल से आधुनिक काल तक चले आ रहे स्त्री शोषण के विरुद्ध जागरण उत्पन्न करना साहित्यकार का दायित्व बन गया है। इस लिए पचहत्तर के बाद स्त्री मुक्ति और स्त्री अस्मिता की खोज साहित्यकार ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। स्त्री अस्मिता से जुड़ी सभी समस्याओं को सही रूप से समझने का प्रयास वर्तमान कालीन कवियों ने किया है।

समकालीन कविता यथार्थ की कविता है। यथार्थ जीवन का खुलासा चित्रण इसमें निहित है। यह इसकी विशेषता है। यथार्थ जीवन की बयान करना समकालीन साहित्यकार की खासियत है। समकालीन साहित्यकार की दृष्टि मात्र किसी एक विसंगति पर टिकते नहीं। वे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का चित्रण अपनी रचनाओं में करते हैं। विसंगतियाँ भरी सांसारिक जीवन में नयी किरणों को फैलाना समकालीन साहित्यकार का प्रमुख उद्देश्य है। दलित, स्त्री आदिवासी, विश्व गाँव की परिकल्पना, विश्व बाज़ार आदि युगीन कविता का विषय है। इन में आने वाले असंगतियाँ, विसंगतियाँ का चित्रण साहित्यकार ने बखूबी किया है। कभी बौद्धिक स्तर पर कभी आत्मपरकीय स्तर पर विसंगतियों को खुलकर लिखना समकालीन साहित्यकार की प्रमुख विशेषता है। हर एक बातों को एक अलग दृष्टि, एक अलग नज़रिए से देखने, समझने का अद्वितीय प्रयास समकालीन साहित्यकार ने किया है। चाहे वह, स्त्री हो, दलित हो, आदिवासी हो उनकी मानसिक संवेदनाओं को सहानुभूतिपरक दृष्टिकोण से स्वानुभूति के रूप में भोगते हुए उनके मन की गहराई तक जाकर महसूस करने का प्रयास समकालीन साहित्यकार ने किया है।

'स्त्री पैदा नहीं होती है, वह बनायी जाती है'- सिमोन द बुआ का कथन समकालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बहुत समीचीन लगता है। हमारी परंपरा, धर्म और संस्कृति स्त्री को गुलामी बना दिया है। अरसे से स्त्री चारों तरफ से पीड़ा से त्रस्त है। इसे वह नियति मानकर चलती है। लोग जब उसे कोसते हैं, उत्पीड़न का शिकार बनाते हैं, कुचल देते हैं, कीचड़ में फेंक देते हैं तब वह उन सब को सहती है। उत्पीड़नों को भोगते-भोगते उनकी मन में यह भावना आ जाती हैं कि सहन करना उनकी नियती है। स्त्री परिवेश की जटिल घेराव में बंधित है। इसी संदर्भ में वह अपनी अस्मिता की तालाश करती है। इस के लिए स्त्री स्वत्व की तलाश करने वाली रचनाओं की आवश्यकता होती है। इस पर विचार करते हुए डॉ. करुणा उमरे की मंतव्य दृष्टव्य है- "स्त्री को धर्म के बंधनों से मुक्त करने वाला साहित्य लिखा जाये तो निश्चित ही उसके परिणाम सकारात्मक होंगे अर्थात् पति धर्म, मातृ धर्म, समाज धर्म के स्थान पर नैतिक धर्मों का एक पैमाना निर्धारित कर, उसे सत्य असत्य की वास्तविकता से परिचित कराने वाला, बोध देने वाला साहित्य होना चाहिए जिससे पुरुष का स्त्री संबंधी दृष्टिकोण एवं उसकी धारणा में परिवर्तन आ सके।[1]"

वास्तव में सामाजिक परिस्थितियाँ स्त्री को गुलाम बना दिया है। मानवीय अस्मिता और स्त्री अस्मिता पर विचार करते हुए अस्तित्ववादी विचारक कर्ल यस्पर्स का कथन है- "व्यक्ति परिस्थितियों के जटिल घेराव में आबद्ध है और निर्वैयक्तिकतात्मक परिवेश में अपने व्यक्तित्व की विरोधी स्थितियों से बंधा हुआ है जब कि कोई भी अस्तित्ववान यह नहीं कह सकता कि वह केवल स्वयं ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु आंतरिक दृष्टि से वह स्वीकार करता है कि विश्व में वह स्वयं के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और सब कुछ बेईमानी और निर्रथक है।"[2]

कार्ल यस्पर्स का यह कथन से यह विदित हुआ है कि मानव परिस्थितियों के चंगुल में फँसकर तड़प रहे हैं। सामाजिक व्यवस्थाएँ मानव को बंधित करते जा रहे हैं। इसी विसंगति भरी समाज में अपने स्पेस (अस्मिता) को समाज में बनाये रखने के लिए मानव प्रयत्न कर रहे हैं। अर्थात् इस सांसारिक जीवन में अपने जीवन को बहुत ही स्वतंत्रता से जीने के लिए

मानव कामना करता है। परंतु सामाजिक परिस्थितियाँ, व्यवस्थाएँ इसके खिलाफ खडे हैं।

कुंठा, निराशा, आशा-आकांक्षा आदि आधुनिक और उत्तराधुनिक समाज का प्रमुख अंग बन गये हैं। ये मानव को अवसाद भरी जीवन जीने के लिए मज़बूर करते हैं। इस संदर्भ में स्त्री की दर्दनाक स्थिति मुखरित होकर सामने आ जाती है। सामाजिक फ्रेम में स्त्री सिर्फ भोग-साधन है। स्त्री की राय को सुनने के लिए पुरुष प्रधान समाज तैयार नहीं है। अगर वह अपनी राय की अभिव्यक्ति करें तो वह समाज की नज़र में गलत है। अपने मन पसंद चीज़ों को चुनने के लिए भी स्त्री स्वतंत्र नहीं है। अगर वह ऐसा करें तो वह समाज से बाहर है। और इसे पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्थाएँ और कृत्रिम मान्यताएँ गलत नज़रिए से देखते हैं, और इसके प्रतिरोध भी करते हैं। अर्थात् सामाजिक स्तर पर स्त्री की जो चिंता, भावना, अभिप्राय और कामना होती हैं उसका दलन, दबन पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्थाओं ने किया है। इसी संदर्भ में हमें यह कह सकते हैं कि स्त्री स्वतंत्रता का मतलब स्त्री अस्मिता है। अगर एक स्त्री अपनी जीवन दिशा को चुन नहीं सकती तो वह अस्वातंत्र है। यानी कि वह सामाजिक व्यवस्थाओं की गुलामीपन में है। इस पर विचार करते हुए ज्याँ पाल सार्त्र ने कहा है- "यदि मनुष्य अपना सार स्वयं नहीं चुन सकता तो उसकी सारी स्वतंत्रता दासता से कम नहीं है।"[3] अर्थात् मानव अपनी स्वतंत्रता से वंचित रहकर गुलामी की जंजीर में बंध नहीं सकता। वह कभी स्वतंत्र जीवन और कभी गुलाम जीवन नहीं जी सकते। इस लिए यह कहना संगत लगता है कि स्वतंत्रता मानव के लिए अभिशप्त है।

समकालीन हिन्दी साहित्यिक जगत् के प्रतिभा धनी कवयित्री है सविता सिंह। उनकी कविताओं में वर्तमान कालीन परिवेश से त्रस्त स्त्री-अस्मिता की पहचान होती है। उनकी कविताएँ वस्तुतः पुरुष वर्चस्व के खिलाफ प्रतिरोध खड़ा करती है। उनकी कविताएँ स्त्रीत्व को पितृसत्तात्मक समाज में कायम रखने की कोशिश करती दिखायी पड़ती है। स्त्री के ऊपर होने वाली अत्याचार, अनाचारों के प्रति यानी समाज के विभिन्न क्षेत्र जैसे सामाजिक राजनैतिक क्षोत्रों में स्त्री अरसे से झेलते रहे उत्पीड़नों के विरुद्ध सविता जी की कविताएँ प्रतिरोधी स्वर मुखरित करती हैं। अपनी कविताओं के माध्यम से सविता जी स्त्री अस्मिता की पहचान कराती है।

सविता जी अपनी कविता 'परंपरा में' में शहररीकरण की भीषण स्थितियों के बारे में बयान करती है। शहरीकरण ने मानव के मन में छल-छद्म, दोगलेपन, आदि का बीज बोया है। साधारणतः यह विचार है कि नगर में बसने वाले लोग सभ्य है। लेकिन सविता जी यह जताना चाहती है कि शहरीकरण के वजह से लोगों के मन में स्त्रियों के प्रति जो भावना है, उसका चित्रण इस कविता में होती है। वहाँ के लोग स्त्री को सिर्फ यौन-कामनाओं का साधन मानते हैं। शहर में बसने वाली स्त्री अपनी काया को अपनी अस्मिता की पहचान समझती है। वहाँ स्त्री शरीर की मांग दिन व दिन बढ़ते जा रही है। सदियों से आ रही पितृसत्तात्मक परंपरा स्त्री की भावनाओं को दबाते रहे हैं। पुरुष प्रधान समाज की मान्यताओं, रूढ़ियों, आचारों के प्रति विद्रोह व्यक्त करते हुए सविता जी कहती हैं कि-

"दूर तक सदियों से चली आ रही परंपरा में
उल्लास नहीं मेरे लिए
कविता नहीं
शब्द भले ही रोशनी के पर्याय रहे हों औरों के लिए

छल-छद्म से बुने जा रहे शब्दों के तंत्र में
इन नगरों के साथ निर्मित की गयी एक स्त्री भी
जिसकी आत्मा बदल गयी उसकी देह में।"[4]

'मुक्ति' शीर्षक कविता में स्त्री मुक्ति के बारे में सविता जी पेश करती है। शताब्दियों से आ रही जो व्यवस्थाएँ हैं ये स्त्री मुक्ति की बाधा बनकर सामने खड़े हैं। समय और समाज स्त्री को कीचड़ में डाल दिया गया है। बावजूद भी सविता जी स्त्री मुक्ति की कामना करती है-

"समय की खाली आँखों में
तैरती शताब्दियाँ
और वह उनमें तैरती मटमैली छायाओं की तरह
रोज़ मुझसे पूछती
कैसे मुक्त होऊँ।"[5]

'कहाँ है अंधकार अब' कविता में सविता जी खो बैठे अस्मिता या अस्तित्व की खोज करती है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज ने स्त्री की अपनी संसार को सिकुड़ बना दिया है। स्त्री की अपनी संसार होती है। वह अपनी उस संसार में स्वप्न देखती है, आनोदुल्लास करती है। लेकिन उनकी उस संसार में उनकी स्वतंत्रता का अनुभव करने के लिए भी उनको हक नहीं है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज ने उनकी स्वतंत्रता को अंधकार रूपी कृत्रिम मान्यताओं, व्यवस्थाओं और परंपराओं के नाम पर छीन लिया है। इस कविता में पुरुष प्रधान सामाजिक मान्यताओं के मुताबिक छीन लिये गए स्त्री स्वत्व की तलाश सविता जी ने की है। वह कहती है-

"जहाँ रोशनी थी
आज उसके नीचे अँधेरा नहीं था
प्रकाश अलग-थलग था

सोचता हुआ
आखिर कहाँ वह छूटा
या स्वयं उसने ही छोड़ा साथ
बनाने के लिए अपना ही सुचिंतित संसार।"[6]

दरअसल पितृसत्तात्मक समाज के माध्यम से आये कृत्रिम मान्यताएँ एक घने पेड़ के समान है। इसकी छाया पूरे संसार में है। जिनके द्वारा स्त्री उत्पीड़न का शिकार बनती जा रही है। इन सबको सहती हुई स्त्री अपनी अस्मिता की तलाश खुद करती है। वह अपनी नियती को खुद लिखती है। सामाजिक छल-छद्म, कपट, सत्य-असत्य को समझना स्त्री के लिए आसान कार्य नहीं है। क्यों कि स्त्री विरोधी व्यवस्थाएँ तथा मान्यताएँ जब तक समाज में मौजूद रहेगा तब तक स्त्री मुक्ति संभव न हो पाएगा और यह नहीं के बराबर भी है। सविता जी व्यवस्थाओं के विरुद्ध खडा करके अपनी कविता 'अपने जैसा जीवन' में बयान करती है-

"मुझसे ही होकर निकलती है एक राह
जिसे ठीक से अभी नहीं जानती
उस पर उगे घने पेड़ों की छाया को नहीं पहचानती
लेकिन है उधर ही कहीं मेरा निर्बाध एक ठौर
जहाँ पहूँचने पर नहीं पूछेगा कोई मेरा नाम
या कि कब करना है मुझे प्रस्थान
क्या मुझमें भी है कोई भूख
प्यास कोई
सत्य और प्रेम की
जहाँ होगा एक अपने जैसा जीवन
हवा फूल आसमान रात और नींद भी
अपने जैसी।"[7]

इसी तरह इस संग्रह की कविताएँ जैसे कोई हवा, सपने की औरत, अवसाद में कविता, संसार का डर, इस तरह, रात नींद सपने, सच का दर्पण, अंधेरे मेरे हिस्से के, मैं किसकी औरत हूँ आदि कविताओं में सविता जी ने स्त्री अस्मिता की तलाश करने की कोशिश की है। निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि उनकी कविताएँ वर्तमान कालीन परिवेश की जटिलता पर नज़र डालती हैं। संत्रस्त स्त्री अस्मिता की पहचान उनकी कविताओं में दिखायी देती हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से दुविधा भरी स्त्री जीवन की सच्चा चित्र खींचने का प्रयत्न किया है। जो सक्षम है और सराहनीय भी है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. करुणा उमरे, स्त्री विमर्शः साहित्यिक और व्यावहारिक संदर्भ, पृ.सं. 16
2. डॉ. पी.ए. रघुराम, समकालीन हिन्दी कविता और अस्मिता, पृ.सं. 28
3. वही, पृ.सं. 26
4. सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, परंपरा में, पृ.सं. 10
5. सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, मुक्ति, पृ.सं. 20
6. सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, कहाँ है अंधकार, पृ.सं. 23
7. सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, अपने जैसा जीवन, पृ.सं. 103-104